IIJIF
Indexed 1675
GENERAL IMPACTFACTOR
INTERNATIONAL PEER Reviewed JOURNAL
ISSUE-1 VOL-2 IMPACT -1.7216 ISSN-2454-6283 JAN-MARCH 2013

शोध-ऋतु

सम्पादक
डॉ. सुनील जाधव

तकनीकी सम्पादक
अनिल जाधव

पत्राचार हेतु कार्यालयीन पता -
डॉ.सुनील जाधव,
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी,
हनुमान गढ़ कमान के सामने,
नांदेड-४३१६०५, महाराष्ट्र

Website - www.shodhritu.com
Email - shodhrityu78@yahoo.com
WhatsApp 9405384672

7.उजड़ती मानवीय संवेदना : 'मिट्टी के लोग'

ए.बाबू
लेक्चर इन हिंदी वी.आर.कॉलेज,नेल्लोर

एस. आर. हरनोट का कहानी संग्रह 'मिट्टी के लोग' बहुआयामी सामाजिक रंगों के भीतर निरन्तर विकसित होते समाज के नीचे पिसते लोगों की आवाज़ है। विकास का यह अन्धा दौर उपेक्षित समुदायों के लिए कब्रगाह बन गए हैं। उन्हीं कब्रगाहों को विकसित होते समाज में बचाने के साथ-साथ उनकी अस्मिता और अस्तित्व की कश्ती को थामे रखने का प्रयास हरनोट ने अपनी कहानियों में किया है। साहित्य में आज मुख्य रूप से दलित, आदिवासी, स्त्री और अल्पसंख्यक समुदायों की ही बात हो रही है। लेकिन इस समाज में बहुत से तबके ऐसे हैं जो आशा के साथ मौन नजरों से अपनी वाणी में चुपकी लिए रेगिस्तान को ताक रहे हैं। ताकि उनकी विलुप्त की जा रही वाणी को सहारा दे उभार सके। हरनोट अपनी कहानियों के हवाले से उन्हीं वाणियों को जीवन्त रखने का मुकम्मल प्रयास करते हैं।

समाज जैसे-जैसे विकास की ओर अग्रसर हो रहा है, वैसे-वैसे ही निरन्तर मनुष्य के साथ मनुष्येतर जीव-जन्तुओं का विनाश होता जा रहा है। समाज के इस अन्ध विकास ने विशिष्ट लोगों को ही फायदा पहुँचाया है। इस लोभकारी भूमंडलीकरण और बाजारवाद ने हाशिये के लोगों के रहने के स्थान और खेती करने की जमीनों को ही अपने विकास के लिए चुना है। जिससे निरन्तर उनके पूरी की पूरी कौम का विनाश होता जा रहा है। हरनोट की कहानी 'बेजुबान दोस्त' इन्ही सन्दर्भों को उकेरती है। लेकिन मनुष्य चाहे तो मनुष्येतर जीव-जन्तुओं का होने वाला विस्थापन और तेजी से हो रहे उनके विनाश को रोक सकता है- "एक दिन गांव के कुछ लोग उस धार पर अपने पशुओं को ढूंढते हुए निकले जहां किशन उन्हें चुगाया करता था। वहां पहुंचे तो एक पहाड़ी के नीचे का दृश्य देख कर दंग रह गए। वहां झाड़ियों में जगह-जगह लोगों के गुम हुए पुराने कोट लटके थे। लोगों की आहट पाकर जेबों से कई चिड़ियाएं बाहर निकली थीं और अजीब तरह से चहचहाना शुरू कर दिया था। तकरीबन हर जेब में उन्होंने एक घोंसला बना लिया था। वे शायद डर गयी थी। तभी जेबों में से उनके कुछ जवान होते बच्चों ने अपनी चोंचें बाहर निकाल दी थीं।"[1] यह ऐसा प्रयास है जो जंगलों के समाप्त होने पर मनुष्य कर सकता है, लेकिन ऐसा नहीं हो पा रहा है। निरन्तर हाशिये के लोगों के साथ-साथ पर्यावरणीय जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों का विस्थापन और विनाश होता जा रहा है। इसके साथ ही महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य के आहत मात्र से ही जीव-जन्तु भयभीत हो जाते हैं। यानि समाज ही नहीं मनुष्येतर समाज भी मनुष्य की लोभलिप्सा से भयभीत हो चूके हैं।

विकास ने केवल मनुष्य, जीव-जन्तु, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों को ही नहीं बल्कि इन सभी के लिए जीवनदायनी 'नदियों के पानी' और 'वायु' को भी अत्याधिक दोहन का शिकार बनाया है। अपने विकास के लिए पूंजीवादी और वर्चस्ववादी लोगों ने नदियों के पानी, बांधों को सुखा दिया है। जिन-जिन क्षेत्रों में उद्योगों को स्थापित किया गया। वहां से नदियों के स्त्रोतें तक सुखा दिए गए। इन नदियों पर निर्भर रहने वाले हाशिये के लोगों को रोज़गार देने के नाम पर ठगा गया। जिन लोगों ने आवाज उठाने की कोशिश की तो पूरे शोषणकारी तन्त्र ने मिलकर उनकी आवाजों को दबाया। 'नदी गायब है' कहानी में कहानीकार लिखते हैं- "अब निर्णय हुआ कि मिलकर इस लड़ाई को लड़ा जाए। कम्पनी का काम रोका जाए। इसलिए उस गांव के साथ कई दूसरे गांव के लोग भी इकट्ठे हो गए और बड़े समूह में विरोध करते हुए कम्पनी के काम को रोक दिया गया। लोग वहीं धरने पर बैठे रहे। दूसरे दिन उन्हें भनक लगी कि शहर से हजारों पुलिस जवान आ रहे हैं।.....लोगों की भीड़ पर पुलिस की लाठियां बरस रही थीं। पर लाठियों का असर कोई खास नहीं हो रहा था। पहाड़ी शरीर, मिट्टी-गोबर से पुष्ट उन देहातियों पर जब लाठियां असरदार नहीं रही तो बंदूकें तन गईं फिर एकाएक गोलियां चल पड़ीं।"[2] इतिहास से लेकर वर्तमान समय तक यही होता आया है कि जब कभी जनसमूह ने एकजुट होकर आवाज उठाई है। तब सत्ता के वर्चस्ववादी लोगों और पूंजीवादियों के साथ मिलकर आन्दोलनकारी जनसमूहों को निर्दयी तरीके से कुचला गया है।

विकास के विकराल रूप से कुटीर उद्योगों का भी विनाश हो रहा है। इस भूमंडलीकरण के समय में हर व्यक्ति जल्दी से जल्दी सब कुछ हासिल कर लेना चाहता है। इसी कारण से मशीनीकरण का विकास तेजी से हो रहा है। जिसके परिणामस्वरूप हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों का ह्रास तेजी से देखने को मिल रहा है। 'मिट्टी के लोग' कहानी इस रूप को रेखांकित करती है। जो व्यक्ति समय के बदलाव के साथ नहीं चल सके वे खत्म से होते चले गए। मशीनीयुग ने हाथ के हुनरों को समाप्त कर दिया है। जिसके चलते हस्त मजदूरों के सम्मुख रोजी-रोटी तक की समस्या उत्पन हो गई है। विकासवाद केवल मजदूरों की कब्र पर बना ताजमहल जैसा लग रहा है। चाहे वे कुमार हो या मिट्टी की ढलाई करने वाले मजदूर सभी कारीगरों का रोजगार बड़ी-बड़ी मशीनों, मल्टीनेशनल कंपनियों ने ले लिया है। जिससे निरन्तर हस्तशिल्पी मजदूर समुदायों का विनाश होता जा रहा है।

भूमंडलीकरण के समय ने केवल मनुष्य के जीवन को ही प्रभावित नहीं किया बल्कि पारिवारिक संबंधों का भी विस्थापन कर दिया है। आज परिवार के लोगों का संबंध आत्मीय न होकर औपचारिक हो गया है। हरनोट 'सड़ान' कहानी के माध्यम से बदलते दौर में संबंधों के विभेदीकरण को दर्शाते हैं। बदलते समय के साथ-साथ संबंधों में तेजी से असंवेदनाएँ पैठ करती जा रही है। संबंध भी आज स्वार्थलिप्सा से सराबोर हो चुके हैं। उसमें मानवीयता का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। मानवीय संबंधों में असंवेदनाओं का पैठ भूमंडलीकरण के दौर की ही उपज है। जिसने निरन्तर आपसी संबंधों को प्रभावित किया है। इस दौर ने मानसिकता में इतना परिवर्तन नहीं किया जितना की बहारी चकाचौंध पर हुआ है। इस कहानी में एक ही परिवार के दो लोग हैं। जो शहरी और ग्रामीण जीवन जीते हैं। ग्रामीण जीवन जीने वाले परिवार का रहन-सहन वैसा ही है लेकिन शहर वाले परिवार का जीवन चकाचौंध से सराबोर है। जिस कारण से वे इस परिवार के बच्चें ग्रामीण परिवार के बच्चों को हेय दृष्टि से देखते हैं। ग्रामीण परिवार का बच्चा यह चाहता है कि उसके भाई-बहन उसके साथ खेले। इसी चाहत में वे उनकी तरह बनना चाहती हैं- *"दादा की तन्द्रा टूटती है। पोती को देखता है तो हक्का-बक्का रह जाता है। उसने अपनी सलवार नीचे से काट कर घुटनों तक छोटी कर दी है। लम्बे बाल दराटी से काट कर कान तक छोटे कर दिए हैं। अपने कुरते की बाहों को काट कर कंधे तक छोटा कर दिया है। कुरते का गला इतना काट दिया है कि उसकी नन्हीं-नन्हीं उगती छातियां दिख जाएं। वह आधे पेट पर झूल रहा है। वह अपनी शहर की बहन जैसी अधनंगी हो गई है। मन में यही सपने लिए कि अब तो वह उससे खेलेगी। बोलेगी।"*[3] बाजारवाद ने सभी की मानसिकता पर कब्जा कर लिया है। चाहे बच्चें ही क्यों न हो। संबंधों के भीतर तक असंवेदनाएँ पैठ कर चुकी हैं।

किसी स्थान और वातावरण का अपना सौन्दर्य और अस्तित्व होता है। जिससे वहां के लोगों की अपनी पहचान भी होती है। ऐसे ही हिमाचल प्रदेश का एक जिला 'किन्नौर' है। जिसे कालान्तर में 'किन्नर देश' के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर निवास करने वाली जनजाति को आज भी किन्नर या किन्नौर के नाम से जाना जाता है। जिसे 1956 में भारतीय संविधान की अनुसूची में शामिल किया गया है। लेकिन हमारे समाज में 'तीसरे लिंग' अर्थात् 'हिजड़ा समुदाय' को भी किन्नर कहा जाता है। जिस कारण से किन्नोर के लोगों की अस्मिता खतरे में पड़ गई है। 'किन्नर' कहानी में इसी बात को रेखांकित किया है। किन्नौर जिले में निवास करने वाले लोग अपने नाम के पीछे किन्नर जोड़ते हैं। ताकि उनके स्थान विशेष का बोध हो सके। लेकिन उस समुदाय के साथ हमेशा से उल्टा होता आया है। क्योंकि जब कभी भी वे लोग किसी भी स्थान पर जाकर अपना परिचय देते हैं तो अक्सर उन्हें जनसमूह 'थर्ड जेंडर' समझ लिया जाता है। जिससे उनकी अस्मिता निरन्तर खतरे में पड़ती जा रही है। ऐसे नहीं है कि इस समुदायों ने अपनी पहचान को बचाएं रखने की कोशिश नहीं की। कोशिश की है लेकिन हर स्थान पर उन्हें उपेक्षा का शिकार होना पड़ा है। यहाँ तक कि सदन तक के बीच-*"अरे किन्नरो! उठो अब। लंच हो गया है।" इस मजाक पर जोर से ठहाके लगे और पूरी सदन गूंज गई। भीतर बैठे अधिकारी और अन्य लोगों के साथ प्रेस गैलरी में बैठे कुछ मीडिया के लोग भी इन ठहाकों में शामिल थे। बेलीराम किन्नर सकपका गया। वह भौंचक्का-सा यह सब देख रहा। सदन और प्रेस गैलरी में गूंजे ठहाके उसके कानों में कनखजूरे की तरह घुसे। उसे लगा जैसे उसके असंख्यक पैर उसके मस्तिस्क में पसर गए हैं और उसका सिर चकरा गया है।"*[4] इस समुदाय की सुनवाई कहीं नहीं हो रही है। उनका जीवन इस प्रकार प्रभावित हो गया है कि वो पहचान

नहीं पा रहे हैं कि वे किन्नर थर्ड जेंडर न होकर बल्कि पहाड़ी में निवास करने वाली अपनी एक प्रकार की समुदाय है।

धर्म के पुरोधाओं ने अपने मठ केवल समतल भूमि पर नहीं बनाये बल्कि जंगलों, पहाड़ों तक को कोई दिव्य चमत्कार बताकर उनपर अतिक्रम किया है। लोगों को गुमराह कर खुद को स्थापित किया है। इस कार्य में सत्ता, पुलिसतन्त्र और न्यायतन्त्र तक धार्मिक पुरोधाओं का साथ देते हैं। धर्म के नाम पर पर्वत-पहाड़ों पर निवास करनेवाले लोगों को विस्थापित कर दिया जाता है। ऐसे लोगों से उनका स्थान छिनकर अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। इस बात की जानकारी पूरे तन्त्र को होती है। लेकिन कोई कुछ नहीं करता। निरन्तर पहाड़ों में विस्फोट करकर उनका दोहन किया जाता है और कहा जाता है कि देवीय चमत्कार के कारण देवी की मूर्ति उत्पन हुई है। जिससे पूरे के पूरे पहाड़ों पर धर्म के नाम पर कब्जा कर लिया जाता है। यह धार्मिक आडम्बर केवल यहाँ तक नहीं रुकता, बल्कि धर्म के नाम पर लोगों को क्या-क्या खिलाया-पिलाया जाता है। 'सड़ान' कहानी में लिखा है-*"घर के नीचे ठीक उस गुफा के ऊपर एक गन्दे पानी का बड़ा टैंक बना था जिसमें आधे शहर की गंदगी इकट्ठी होती थी। उसकी नजर उस पर चली गई। नीचे की तरफ एक दरार-सी दिखी। ऊपर चढ़ने के बजाय वह टैंक की तरफ चला गया। गुफा में हुए ब्लास्टों से टैंक फट गया था और गंदा पानी बाहर निकल कर एक छोटी-सी कूहल से बिल्कुल गुफा के ऊपर जा कर उसके भीतर रिस रहा था। देवी के चमत्कार का राज खुल गया। वह हतप्रभ-सा काफी देर सिर पकड़ कर वहीं बैठा रहा। केली और पारब जो जब उसने इस बात को बताया तो वे यह सोच कर हक्के-बक्के रह गए थे कि लोग उस गंदे पानी को देवी का अमृत मान कर पीए जा रहे हैं।"*[5] यह सामाजिक अन्धविश्वास की ओर संकेत है जिसमें विवेक का निरन्तर आभाव है।

हरनोट अपनी कहानियों में पहाड़ी जीवन के स्वरूप को दर्शाते हैं। 'चीखें' कहानी मार्मिकता के साथ पहाड़ी जीवन की त्रासदियों को अभिव्यक्त करती है। उनका जीवन आज भी आधुनिक सुख-सुविधाओं से वंचित है। उनके जीवन में रोजमर्रा की जरूरतों के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है। इसके उपरांत भी वे लोग अपनी जरूरत पूरी नहीं कर पाते हैं -*"सड़क पर स्ट्रेचर और उस पर बिलखती-चीखती-छटपटाती रामो एक जिंदा लाश लग रही थी। उबड़-खाबड़ सड़क के बीच उनका स्ट्रेचर इतने जोर की टनटनाहट कर रहा था जैसे भयंकर तूफान से किसी घर की टीन की छत उड़ गई हो। या बजरी पीसने वाली मशीन जोर-जोर से दहाड़ रही हो। या किसी टूटी-फूटी सड़क पर कोई पुराना सा ट्रक भाग रहा हो। यह ऐसा शोर था जिसने राह चलते इंसानों को आश्चर्यचकित कर दिया और गलियों से कुत्तों तक को भौंकने पर मजबूर कर दिया था।"*[6] विकस की अवधारण विशेष शहरों तक ही सीमित है। बल्कि जिन स्थानों, क्षेत्रों में इनकी जरूरत है वहां पर कोई विशेष लाभ नहीं मिल रहा है। छोटी-छोटी जरूरतों के लिए पहाड़ी निवासियों को काफी संघर्ष करना पड़ता है। यह कहानी इस बात को रेखांकित करती है।

हरनोट की कहानियाँ पहाड़ी जीवन के लोगों की अभिव्यक्ति है। क्योंकि उन्होंने अपने आस-पास के वातावरण को ही अपनी रचना-प्रकिया का आधार बनाया है। विकसित होते समाज की चकाचौंध ने हाशिये के समुदायों को नितन्तर जीवंत वातावरण से ओझल कर दिया है। यह ठीक है कि समाज निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होता जा रहा है। नित्य नई तकनीकी का विकास तेजी से हो रहा है। लेकिन इससे समाज में विकास तो दिखाई दे रहा है लेकिन मानवीय संवेदनाएँ मृत होती जा रही हैं। असंवेदनाओं को घैराव बढ़ता जा रहा है। इस विकासवादी समय ने केवल मनुष्य का ही नहीं बल्कि जीव-जन्तुओं, प्राकृतिक वस्तुओं का दोहन भी लोभलिप्सा के लिए निरन्तर हो रहा है। जिस कारण से उनकी अस्मिता और जीवन संकट में पड़ गए हैं। कुटीर उद्योग निरन्तर समाप्त होते जा रहे हैं, हस्तशिल्पी कारीगरों का जीवन व्यापन नहीं हो पा रहा है। वे कब्र की गर्त में समाते जा रहे हैं। मानवीय और आपसी संबंधों में निरन्तर दूरी बढ़ती जा रही है और असंवेदनाएँ जीवन में बसती जा रही हैं। हरनोट इन सभी प्रसंगों को अपनी कहानियों का आधार बनाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

हरनोट, एस.आर., *मिट्टी के लोग*, आधार प्रकाशन, पंचकूला प्रथम संस्करण-2010, पृ.सं.-25
वही, पृ.सं.- 80-81
वही, पृ.सं.- 146
वही, पृ.सं.- 73
वही, पृ.सं.- 134-135
वही, पृ.सं.- 107